

पर्यावरण : दायित्व और उत्तरदायित्व का प्रश्न

डॉ. प्रियंका मिश्र

दिल्ली विश्वविद्यालय

पर्यावरण पारिस्थिकी का सम्बन्ध प्रकृति की स्वाभाविक मूल संरचना से सम्बन्धित विषय से है। वास्तविक संरचना जिसके कारक खुद प्रकृति ही होती है, इसमें मानवीय, वैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और बौद्धिक सोच से उत्पन्न विकास जिसे इस विकास के विशेषण से विशेषित करते हैं। क्षणिक लाभ जो मृग-मरिचिका की भांति हमें दिखाई देता है, लोभ को संवरण नहीं कर पाते और वह अनिश्चित अवसाद में पहुंचकर जब हमें प्रभावित करना शुरू करता है तो कुम्भकरणी निद्रा तंद्रा भंग होने लगती है और हमें लगने लगता है कि कहीं-न-कहीं कुछ अशुभ हो रहा है। पर क्या कर सकते हैं हैं जब 'फिर पछताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत' या 'का बरषा जब कृषि सुखाने' की स्थिति पैदा हो गयी हो।

विकास के नाम पर प्रकृति का अंधाधुंध दोहन, अस्वाभाविक शोषण, मानव संसाधन का राष्ट्र के विकास में नाम मात्रा का समायोजन, बेरोजगारी का बढ़ता अंधार, अनुचित नीतियाँ, अनुपयुक्त दीर्घकालिक कार्यक्रम आदि ऐसे कारक तत्व हैं जिनके कारण पर्यावरण की समस्या भयावह स्थिति रूप धरण करती चली जा रही है। महात्मा गांधी कागजों में तो प्रासंगिक हैं किन्तु मूल्यों में गांधी का तिरोहण होता जा रहा है। इस महान अदृश्य आत्मा का सदृश्य नाम आज भी राजनैतिक दलों के वोट का आधार है लेकिन धरातल पर अप्रासंगिक किया जा रहा है। उनके महान विचार मसलन विकास का लक्ष्य समाज और देश का अंतिम व्यक्ति हो, उस विचार के विपरीत विकास के सोपान शुरू होते हैं – कारपोरेट घरानों से, नीति निर्माता राजनैतिक

आकाओं के वातानुकूलित कमरों से, जिन्हें ये तक भी नहीं पता कि किसान आलू साबुत बोता है या कि टुकड़ों में काटकर।

गांधी जी का विचार था आजादी की प्राप्ति के बाद आर्थिक आजादी दिलाने का – कुछ औद्योगिक घरानों को नहीं, राजनेताओं को नहीं, कुछ प्रशासनिक अधिकारियों को नहीं बल्कि समूचे भारत को। देश की जनसंख्या जो जहां है, जैसे है उसी के अनुरूप कुटीर उद्योगों के माध्यम से, आर्थिक सशक्तिकरण के माध्यम से, ताकि भारत का हर कोना संतुलित रूप से विकसित एवं सशक्त हो। लेकिन विश्व की अरबों खरबों की आबादी मिलकर भी अपनी धरती मां के स्वास्थ्य की देखभाल में अपने को अक्षम मान बैठी है।

वास्तव में जलवायु परिवर्तन के पफलस्वरूप जन्मा प्राकृतिक असंतुलन आधुनिक मानव सभ्यता के समक्ष एक विकट समस्या है। पृथ्वी का लगातार बढ़ता हुआ तापमान ऋतुचक्र के परिवर्तन का सबसे बड़ा कारण बन चुका है। प्रकृति के नियमों के साथ किया गया खिलवाड़ पृथ्वी के भविष्य को संकट की ओर धकेलता चला जा रहा है। हाल ही में डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगन में वैश्विक जलवायु परिवर्तन को लेकर हुई वार्ता में पर्यावरण के मुद्दों पर विश्व में एकमत सहमति न होना उसकी विफलता को साबित करती है। इस विफलता का कारण यह था कि मनुष्य अपनी सुख-सुविधाओं को त्यागकर अपने भविष्य के निर्माण के लिए प्रकृति के साथ सहभागी बनने के लिए तत्पर नहीं है। केवल इच्छाओं को व्यक्त कर देने से प्राकृतिक असंतुलन की स्थिति को सुधारा नहीं जा सकता।

लगातार होते जलवायु परिवर्तन के कारण विश्व में पर्यावरण संबंधी अनेक समस्याओं ने जन्म लिया है। इनमें विशेष रूप से 'समुद्री जलस्तर का बढ़ना, मैदानी इलाकों में शीतऋतु की अवधि घटना, पृथ्वी के तापमान में स्थाई वृद्धि, ग्रासलैंड का आकार सिमटना, सूखा, अतिवृष्टि, चक्रवात और समुद्री हलचल, विभिन्न बीमारियों के कारण स्वास्थ्य पर संकट, ध्रुवीय क्षेत्रों की बर्फ का पिघलना एवं पशु-पक्षियों व वनस्पतियों की संख्या में कमी शामिल है।'

प्रकृति के विघटन के संदर्भ में प्रमुख पर्यावरणविदों और विश्लेषकों का मत है कि यह परिवर्तन प्राकृतिक है। उनके मतानुसार प्रकृति सदैव बदलाव चाहती है और इस बदलाव की प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से बहुत धीमी होती है जिसे आम सामाजिक सहजता से नहीं पहचान पाता। लेकिन परिवर्तन का चक्र जब अपने पूर्ण रूप में होता है तब प्रकृति तेजी से अपने बदलाव की ओर बढ़ती है। एकाएक होने वाले इस परिवर्तन के परिणाम ऐसे होते हैं जिन्हें समझ पाना सामान्य व्यक्ति के अधिकार में नहीं होता। इसके परिणामस्वरूप न समझ में आने वाले तथ्य एवं रहस्य लगातार उद्घाटित होते हैं और हमें विस्मय और आश्चर्य की ओर धकेल देते हैं।

लेकिन कुछ विश्लेषक विशेषज्ञों की इस राय से सहमत नहीं है। उनके अनुसार प्रकृति अपने स्वाभाविक रूप में परिवर्तित हो तो विनाश की सम्भावना अधिक नहीं होती लेकिन पर्यावरण की वर्तमान विभीषिका के लिए मनुष्य एवं उसके क्रियाकलाप ही उत्तरदायी हैं। मनुष्य की भोग-लिप्सायें अनियन्त्रण की स्थिति तक पहुंच चुकी हैं। इस भोग-लिप्सा का ही यह परिणाम रहा कि मनुष्य और पर्यावरण के बीच संवेदनशील सूत्र विखण्डित हो चुके हैं। पर्यावरण असंतुलन एवं विकास के लिए सभी घटकों की समुचित उपादेयता है, परन्तु इनके टूटते ही पर्यावरण

विनाश की प्रक्रिया भी चल पड़ी, जिसका परिणाम हमारे समक्ष है।

कुछ वर्षों पहले केदारनाथ उत्तराखण्ड की छाती पर प्रकृति का वीभत्स ताण्डव पूरे विश्व ने देखा। इस भयानक आपदा ने समूचे विश्व को एक बार पिफर से पर्यावरण के प्रति चिन्तन और शोध करने के लिए बाध्य कर दिया। क्या यह प्राकृतिक आपदा पर्यावरण के असंतुलन का परिणाम थी या फिर मनुष्य समाज ने जिस तरह से पहाड़ी क्षेत्रों में लगे वृक्षों को काटकर उनके स्थान पर आवासों और बाजार को जगह दी, कहीं उसी के फलस्वरूप इस भयानक आपदा ने अपना कहर तो नहीं ढाया? विश्लेषकों की राय और विशेषज्ञों ने अपने शोध के माध्यम से इसे मनुष्य समाज द्वारा प्रकृति से किए जाने वाले खिलवाड़ का एक कारण बताया। पहाड़ों पर वृक्षों का लगातार कटाव पहाड़ी मिट्टी को कमजोर करता चला जा रहा है और पहाड़ पर बनने वाली कृत्रिम झीलों का पानी इस कटाव से धीरे-धीरे रिसकर नदियों में बहता था किन्तु मिट्टी को वृक्षों की जिन जड़ों ने सदियों से थाम रखा था अचानक वे जड़े सुविधाओं की बली चढ़ गईं और ऐसी भयानक आपदा ने हजारों परिवारों के जीवन को तहस-नहस कर दिया।

भारतीय साहित्य में सदियों से प्रकृति के प्रति चिन्ता व्यक्त की जाती रही है। प्रकृति कवियों के लिए मनुष्य की सहचरी रही है। मनुष्य को प्रकृति के प्रति संवेदनशील रहा है। ऋग्वेद में तो कहा भी गया है कि –

यत् ते भूमे विश्नामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।

मा ते मम्र विमृग्वरि माते हृदयमर्पिपम्।

अर्थात् हे धरती माता, जब मैं भोजन, औषधिक आदि के लिए वनस्पतियों को काटता हूँ, तुम्हारे तद को खोदता हूँ, तो हृदय से यह भी चाहता हूँ कि तुम्हारे घाव जल्दी भरें, अनेक गुना वनस्पतियां बढ़ें।

कालिदास के लिए प्रकृति सहचरी रही। कालिदास के लिए ही क्यों बल्कि प्रकृति तो मनुष्य के लिए भी सहचरी रही है। लेकिन साहित्यकारों के जिस तरह से प्रकृति के सहचरी रूप को अपनी रचनाओं के माध्यम से वाणी दी, वह केवल उनकी प्रकृति के प्रति संवेदना का आधार नहीं था बल्कि प्रकृति के संरक्षण का एक विचार भी था। लेकिन समस्या यह है कि पर्यावरण की चिन्ता तो आज के मनुष्य समाज को भी है किन्तु अपनी भोगवादी संस्कृति से मुक्ति की कल्पना वह कर ही नहीं पा रहा। इसीलिए पर्यावरण का बढ़ता हुआ असंतुलन उसे चिन्तित तो करता है किन्तु उस चिन्ता के पीछे उसे बचाने के लिए व्यवस्था के स्तर पर सहयोग उसे नहीं मिल पा रहा।

जंगल लगातार कटते चले जा रहे हैं, नदियों का पानी निरन्तर कम होता चला रहा है। धरती के नीचे जलस्तर इतना नीचे चला गया है कि आने वाले समय में जल मनुष्य के बीच युद्ध का सबसे बड़ा कारण बनने जा रहा है। धरती का लगातार बढ़ता हुआ यह दोहन कवि को चिन्ता में डाल देता है और वह कहता है –

धरती धरती है – पन्हाई हुई गाय नहीं

कि चट दुह लो कटिया भर दूध

चावल या गेंहु की ढेर नहीं

कि कुर्क करा के उठाले जाओ

बच दो मंडियों में जाकर।

नहीं है वह ऑटो मोबाईल

कि स्विच दबाकर झाड़व करोगे

छोड़ दोगे पटना या दिल्ली।

धरती उनके लिए जीवन सत्ता है।

अपनी अपनी सुविधाओं के लिए धरती को वीरान और बंजन बनाने वाली भोगवादी पीढ़ी यदि समय रहते नहीं चेती तो पर्यावरण की भयावहता का रूप उसे स्वयं चेतावनी देने के लिए क्रियायें करेगा। उत्तरदायित्व केवल व्यवस्था का नहीं, मनुष्य समाज का भी है। अपनी सुविधाओं को सीमित कर और प्रकृति के प्रति सम्बन्धत्मक भाव अपनाकर ही वह पर्यावरण को अपना जीवन बना पाएगा।

संदर्भ ग्रंथ

- ✚ जंगल होता शहर, डॉ. राहुल, संधन प्रकाशन, दिल्ली
- ✚ समकालीन हिन्दी काव्य : दशा और दिशा, डॉ. जय प्रकाश शर्मा, अनंग प्रकाशन, दिल्ली
- ✚ स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कहानी : समय से संवाद, डॉ. हरीश अरोड़ा, साहित्य संचय प्रकाशन, दिल्ली
- ✚ स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता : समय से संवाद, डॉ. हरीश अरोड़ा, साहित्य संचय प्रकाशन, दिल्ली
- ✚ पर्यावरणीय संवेदना, डॉ. मीना शर्मा, नमन प्रकाशन, दिल्ली